पूज्य लालचंदभाई के प्रवचन
श्री समयसार गाथा ७३
लंदन हॉल प्रवचन ६, ता. १२-०७-१९८२

यह एक श्री समयसार जी परमागम शास्त्र है। उसका कर्ता-कर्म अधिकार चलता है। उसकी ७३ नंबर की गाथा हमें शुरू करनी है। अनादिकाल से आत्मा की भूल यह हुई है कि मैं एक चैतन्य स्वरूपी आत्मा कर्ता हूँ और ये क्रोध, मान, माया, लोभ के परिणाम वह मेरा कर्म हैं अथवा राग-द्वेष-मोह के परिणाम होते हैं वे मेरे कर्म हैं, अथवा संकल्प और विकल्प जो उत्पन्न होते हैं वे मेरा कार्य और कर्तव्य हैं और मैं उनका कर्ता हूँ। इसप्रकार अनादिकाल से आत्मा अपने स्वभाव को भूलकर आत्मा का ज्ञान, वह आत्मा का कर्म होना चाहिए, उसके बदले अनादिकाल से राग को कर्म बनाता आता है। कर्म अर्थात् कार्य।

मैं रागादि का कर्ता हूँ और ये रागादि परिणाम मेरे कर्म हैं, मैं कर्ता हूँ और अशुभभाव और शुभभाव, वे मेरे कर्म हैं। मैं कर्ता हूँ और पुण्य के और पाप के परिणाम वे मेरा कर्म हैं। इसप्रकार अनादिकाल से आत्मा अपने स्वभाव को भूलकर, इन रागादि विकार के साथ एकताबुद्धि करके, कर्ता-कर्म की प्रवृत्ति कर रहा है। वह आत्मा अज्ञान से दुःखी होता है। राग को करना और राग का फल दुःख-आकुलता, उसको भोगना वह आत्मा का स्वभाव नहीं है। यदि रागादि को करना वह आत्मा का स्वभाव हो तो आत्मा अनादि-अनंत है और रागादिरूप से कर्म हुआ ही करे और उसका कर्ता बना (ही) करे, तो किसी भी काल में उसकी दशा में वीतरागभाव प्रगट न हो सके। अतः रागादि की कर्तापने की बुद्धि तो तब तक भासित होती है कि जब तक उसे स्वभाव दृष्टि नहीं है कि मैं तो एक ज्ञानमय आत्मा हूँ, ज्ञान ही मेरा कर्म है कि जो कार्य स्वभावरूप है और आत्मा को आनंददायक है। ऐसे आत्मा के ज्ञान को कर्म नहीं बनाता हुआ, राग को कर्म बना-बनाकर और अज्ञानभाव से अनंतकाल से दुःखी हो रहा है।

ऐसी कर्ता-कर्म की प्रवृत्ति का अभाव होकर शुद्धात्मा कर्ता और शुद्धात्मा का अवलंबन लेने पर, जो आत्मज्ञान होता है वह आत्मा का कर्म जब बने तब उसे धर्म की शुरूआत होती है। वह विषय यहाँ कर्ता-कर्म अधिकार में कहने में आता है। अनादिकाल से आत्मा या तो ईश्वर को कर्ता मानता है या स्वयं को पर का कर्ता मान रहा है। परपदार्थ से मेरे परिणाम होते हैं और मेरे से परपदार्थ के परिणमन होता है इसप्रकार अनादिकाल से, अज्ञानभाव से दो द्रव्य में कर्ता-कर्म संबंध का अभाव होने पर भी मैं करनेवाला और जगत के पदार्थ वे मेरे कार्य हैं, इसप्रकार अनादिकाल से मानकर वह दुःखी हो रहा है परंतु आत्मज्ञान एक समयमात्र भी वह करता नहीं है।

जब तक आत्मा का भान नहीं है, आत्मा का ज्ञान नहीं है, शुद्धात्मा का श्रद्धान नहीं है, शुद्धात्मा का अनुभव नहीं होता तब तक आत्मा अज्ञानी रहता है। जब उस आत्मा को राग से भिन्न ऐसे शुद्धात्मा का लक्ष होता है, दृष्टि में शुद्धात्मा आता है, ध्यान का ध्येय शुद्धात्मा होता है, ज्ञान का ज्ञेय अपना आत्मा

होता है तब वह आत्मा सम्यक् पर्याय से परिणम जाता है। अर्थात् कि सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूप परिणमता है उसे परमात्मा तीर्थंकर देवाधिदेव धर्म कहते हैं। ऐसे शुद्धात्मा का लक्ष कैसे हो उसके लिए एक यह गाथा है।

अब प्रश्न करता है कि यह आत्मा किस विधिसे आस्रवोंसे निवृत्त होता है? उसके उत्तररूप गाथा कहते हैं : —

मैं एक, शुद्ध, ममत्वहीन रु ज्ञानदर्शनपूर्ण हूँ ।
इसमें रह स्थित, लीन इसमें, शीघ्र ये सब क्षय करूँ ॥७३॥

गाथार्थ : — ज्ञानी विचार करता है कि — [खलु] निश्चयसे [अहम्] मैं [एकः] एक हूँ, [शुद्धः] शुद्ध हूँ, [निर्ममतः] ममतारहित हूँ, [ज्ञानदर्शनसमग्रः] ज्ञानदर्शनसे पूर्ण हूँ; [तस्मिन् स्थितः] उस स्वभावमें रहता हुआ, [तच्चित्तः] उससे (-उस चैतन्य-अनुभवमें) लीन होता हुआ (मैं) [एतान्] इन [सर्वान्] क्रोधादिक सर्व आस्रवोंको [क्षयं] क्षयको [नयामि] प्राप्त कराता हूँ।

टीका : — मैं यह आत्मा — प्रत्यक्ष अखण्ड अनन्त चिन्मात्र ज्योति — अनादि-अनन्त नित्य-उदयरूप विज्ञानघनस्वभावभावत्वके कारण एक हूँ; (कर्ता, कर्म, करण, संप्रदान, अपादान और अधिकरणस्वरूप) सर्व कारकोंकी समूहकी प्रक्रियासे पारको प्राप्त जो निर्मल अनुभूति, उस अनुभूतिमात्रपनेके कारण शुद्ध हूँ; पुद्गलद्रव्य जिसका स्वामी है ऐसा जो क्रोधादिभावोंका विश्वरूपत्व (अनेकरूपत्व) उसके स्वामीपनेरूप स्वयं सदा ही नहीं परिणमता होनेसे ममतारहित हूँ; चिन्मात्र ज्योतिकी, वस्तुस्वभावसे ही, सामान्य और विशेषसे परिपूर्णता होनेसे, मैं ज्ञानदर्शनसे परिपूर्ण हूँ। — ऐसा मैं आकाशादि द्रव्यकी भाँति पारमार्थिक वस्तुविशेष हूँ। इसलिये अब मैं समस्त परद्रव्यप्रवृत्तिसे निवृत्ति द्वारा इसी आत्मस्वभावमें निश्चल रहता हुआ, समस्त परद्रव्यके निमित्तसे विशेषरूप चेतनमें होनेवाले चञ्चल कल्लोलोंके निरोधसे इसको ही (इस चैतन्यस्वरूपको ही) अनुभव करता हुआ, अपने अज्ञानसे आत्मामें उत्पन्न होनेवाले जो यह क्रोधादिक भाव हैं उन सबका क्षय करता हूँ — ऐसा आत्मामें निश्चय करके, जिसने बहुत समयसे पकड़े हुए जहाजको छोड़ दिया है ऐसे समुद्रके भँवरकी भाँति, जिसने सर्व विकल्पोंको शीघ्र ही वमन कर दिया है ऐसा, निर्विकल्प अचलित निर्मल आत्माका अवलम्बन करता हुआ, विज्ञानघन होता हुआ, यह आत्मा आस्रवोंसे निवृत्त होता है ।

भावार्थ : — शुद्धनयसे ज्ञानीने आत्माका ऐसा निश्चय किया है कि — 'मैं एक हूँ, शुद्ध हूँ, परद्रव्यके प्रति ममतारहित हूँ, ज्ञानदर्शनसे पूर्ण वस्तु हूँ'। जब वह ज्ञानी आत्मा ऐसे अपने स्वरूपमें रहता हुआ उसीके अनुभवरूप हो तब क्रोधादिक आस्रव क्षयको प्राप्त होते हैं। जैसे समुद्रके आवर्त्त(भँवर) ने बहुत समयसे जहाजको पकड़ रखा हो और जब वह आवर्त्त शमन हो जाता है तब वह उस जहाजको छोड़ देता है, इसीप्रकार आत्मा विकल्पोंके आवर्त्तको शमन करता हुआ आस्रवोंको छोड़ देता है ॥७३॥

शिष्य का प्रश्न है, **अब प्रश्न करता है कि किस विधिसे** अर्थात् किस **विधिसे यह आत्मा आस्रवों से निवृत्त होता है**?

आस्रव अर्थात् जो दुःख के कारण हैं, राग-द्वेष-मोह के भाव, उनसे निवृत्त कैसे हो? उस दुःख से आत्मा का छुटकारा कैसे हो? चारगति के दुःख भोगता है, भोगते-भोगते अनंतकाल गया। अब, जब किसी लायक जीव को संसार में दुःख भासित होता है, कहीं आत्मिक शांति और आत्मिक सुख प्राप्त होता नहीं तब वह प्राणी, वह आत्मा, लायक जीव श्रीगुरु को प्रश्न करता है कि 'प्रभु! ये अनादिकाल से चारगति के दुःख मैंने भोगे, अब दुःख सहन नहीं होते, मेरे इस दुःख की निवृत्ति का उपाय क्या? वह (मुझे) जानना है। कृपा करके आप मुझे समझाईये।'

इसप्रकार जो शिष्य जिज्ञासु होकर प्रश्न करता है उसे आचार्य भगवान उत्तर देते हैं कि सुन, दुःख से रहित होने का, दुःख से छूटने का उपाय मैं तुझे बताता हूँ, मुझे भी मेरे गुरु ने यह उपाय बताया था। मुझे भी इस दुःख से मुक्ति हुई है और आत्मिक सुख की प्राप्ति हुई है। ऐसे मुनिराज स्वयं दूसरे जीवों को समझाते हैं कि तुम भी आत्मा के रास्ते जाओ तो तुम्हें आत्मा की प्राप्ति होगी और शाश्वत सुख तुम्हें मिलेगा।

यहाँ लंदन में मैंने देखा कि सबके पास नक्शे होते हैं। दूसरी जगह पर - दस मील, बीस मील, तीस मील, चालीस मील - जाना हो तो नक्शा देखकर जाते हैं। कोई-किसी से पूछता नहीं है। नक्शा देखकर जाते हैं। जहाँ स्वयं जाने का ध्येय निश्चित किया हो वहाँ नक्शा देखकर जाते हैं। परंतु इस आत्मा का नक्शा क्या है? उस नक्शे को खोजते नहीं हैं। वे नक्शे सभी शास्त्रों में छपे हुए हैं। जैसे वे छपे हुए नक्शे मिलते हैं यहाँ तैयार ऐसा ये नक्शा छपा हुआ है। कि आत्मा की ओर जाना हो, आत्मा की ओर गति करनी हो और यदि तेरा ध्येय आत्मा हो, जैसे दूसरी जगह पर चालीस मील जाना हो तो वह ध्येय कहलाता है। जहाँ पहुँचना हो उसे ध्येय कहते हैं।

तो उसके लिए जैसे लंदन के नक्शे हैं, ऐसे ही ये संत, आत्मा के अनुभवी, वीतरागी संत आत्मा का नक्शा बताते हैं कि, भाई! दुःख से छूटने का उपाय मैं तुझे बताता हूँ, सुन। कोई तुझे शरण नहीं है, कुटुंब, कबीला, परिवार, धन, धान्य, दास, दासी कोई तुझे शरण नहीं है। एक आत्मा ही शरण होता है। अतः जल्दी से जल्दी आत्मा की शरण लेकर, आत्मा का अनुभव करना उसे परमात्मा धर्म कहते हैं। उस आत्मा का अनुभव करने पर आत्मा दुःख से छूट जाता है। पहले मोह छूटता है और फिर विशेष आत्मा में लीनता, रमणतारूप चारित्र अंगीकार हो तब राग-द्वेष का अभाव होकर परिपूर्ण परमात्म दशा प्रगट होती है।

इसप्रकार ये आचार्य भगवान दुःख से छूटने का अथवा सुख की प्राप्ति का उपाय बताते हैं। ७३ नंबर की गाथा है।

अहमेक्को खलु सुद्धो णिम्ममओ णाणदंसणसमग्गो।
तम्हि ठिदो तच्चित्तो सव्वे एदे खयं णेमि॥७३॥
मैं एक, शुद्ध, ममत्वहीन रु, ज्ञानदर्शनपूर्ण हूँ।
इसमें रहूँ स्थित, लीन इसमें, शीघ्र ये सब क्षय करूँ॥७३॥

यह अपूर्व आत्मा की बात है। सर्वज्ञ भगवान द्वारा कथित और संतों ने अपने अनुभव से सिद्ध करके इस शास्त्र की रचना की है। उसमें आचार्य भगवान ने शुद्धात्मा का स्वरूप क्या और उसका अवलंबन कैसे लिया जा सके? उसका इसमें उपाय बताने में आया है। **ज्ञानी विचार करता है कि:-** अर्थात् ज्ञानवान विचार करता है कि, अर्थात् संज्ञी पँचेन्द्रिय मनुष्य है उसके पास इन्द्रियज्ञान, क्षयोपशमज्ञान (है)। मनवाला प्राणी है, अपने हित और अहित का विचार कर सकने की शक्ति सबमें प्रगट हो गई है। परंतु कौनसा भाव हितरूप और कौनसा भाव अहितरूप? उसका उसे बिल्कुल विवेक अर्थात् ख्याल नहीं है इसलिए अहितरूप भाव को स्वयं को हितरूप मानकर उसे अपनाता है और हितरूप भाव को अनादिकाल से छोड़ता है, लक्ष में लेता नहीं है।

ऐसे मनवाले प्राणी मनुष्य को उपदेश देते हैं। समझी जा सके ऐसी बात है। समझनेवाले को समझाते हैं। नहीं समझनेवाले को समझाते नहीं हैं। समझने की शक्ति सभी में वर्तमान (में) प्रगट है। यदि समझने की रुचि रखे, धगश रखे तो समझ में आये ऐसी चीज है। अनंत आत्मायें प्रथम मिथ्यादृष्टि, अज्ञानी थीं। वे ही आत्मायें अंतरात्मा होती हैं। और वे ही आत्मायें विशेष लीन होकर परमात्म दशा को प्राप्त करती हैं।

तो **ज्ञानी विचार करता है कि:-** अर्थात् ज्ञानवान **विचार करता है कि:- निश्चयसे मैं एक हूँ**। मैं अर्थात् आत्मा। यह देह सो मैं नहीं हूँ। यह राग वह मैं नहीं हूँ। मैं तो एक ज्ञान और दर्शनमय आत्मा हूँ। **मैं एक हूँ,** मैं **शुद्ध हूँ**। जो अशुद्धता है, वर्तमान परिणाम में जो पुण्य-पाप की अशुद्धता है, शुभ और अशुभभाव की (जो) अशुद्धता है, व्रत और अव्रत के परिणाम की जो अशुद्धता है वो मैं नहीं हूँ, वो आस्रवतत्त्व है। मैं जीवतत्त्व हूँ अतः मैं शुद्ध हूँ। मेरा स्वभाव शुद्ध है।

आत्मा के दो पहलू हैं। एक वर्तमान परिणामरूप का पहलू और एक द्रव्यरूप पहलू। द्रव्य में अनंत गुण रहे हुए हैं और परिणाम एक समय के होते हैं। जिसमें राग-द्वेष-मोह होता है वे परिणाम अशुद्ध हैं। मैं अशुद्ध नहीं, मैं तो शुद्ध हूँ। देखो ये परिणाम में राग-द्वेष-मोह के नाश का उपाय बताते हैं। मैं एक हूँ, मैं शुद्ध हूँ, मेरा स्वभाव तीनोंकाल शुद्ध है। मैं **ममतारहित हूँ,** परिणाम में ममता होती है। और परिणाम में ममता होने पर दुःख भी होता है परंतु उस परिणाम में जो ममता होती है और ममताजन्य जो दुःख होता है उसके नाश का उपाय क्या है? कि मैं तीनोंकाल निर्ममत्व हूँ।

एकबार द्रव्य स्वभाव को देख। भाई! एकबार अपने द्रव्य स्वभाव (को देख)। क्या द्रव्य और क्या पर्याय? उसकी भी खबर नहीं। सोने को द्रव्य कहते हैं और उसकी अवस्था को परिणाम कहते हैं, पर्याय कहते हैं। ऐसे आत्मा अनादि-अनंत है। देवगति में था वही का वही आत्मा मनुष्यगति में है और मनुष्यगति में से वापस देवगति में जायेगा तो भी आत्मा वही का वही है। जो आत्मा नित्य टिकता है उसे द्रव्य कहते हैं और परिणाम पलटते हैं उन्हें पर्याय कहने में आती है। इतना कम से कम ज्ञान तो धर्म समझने के लिए अथवा आत्मा का स्वरूप समझने के लिए जरूरी है। इतना भी ज्ञान करने के लिए यदि लापरवाह रहे तो उसे समझ में आयेगा नहीं। मैं **ममतारहित हूँ**। परिणाम में ममत्व होता है। देह मेरा, कुटुंब मेरा, मोटर मेरी इसप्रकार परपदार्थ में ममता होती है तब की बात है और ममता का दुःख वेदन में आता है, उस समय की बात है।

कि उस ममत्वभाव और ममत्वजन्य दुःख उसके नाश का उपाय क्या है? कि तू परिणाम को अब मत देख। परिणाम में ममता होती है यह बात सही है। परंतु परिणाम में ममता होती है उसकी ओर का लक्ष छोड़ दे। और स्वभाव का लक्ष कर तो स्वभाव में ममता का अभाव है। पर्याय में ममता का सद्भाव और द्रव्य स्वभाव में ममता का अभाव, इसका नाम अनेकांत है। द्रव्य में पर्याय की नास्ति है। द्रव्य में गुणों की अस्ति है। ज्ञान, दर्शन, सुख वगैरह द्रव्य स्वभाव में गुण हैं। जैसे सोने में, सोना द्रव्य है, उसमें पीलापन, चिकनापन, भारीपन, वजन वे उसके गुण हैं। और समय(-समय) पर उसकी अवस्थायें होती हैं। चैन होती है, पौंची होती है, कड़ा, कुंडल सब होते हैं वे उसकी अवस्थायें हैं। द्रव्य भी है और अवस्थायें भी होती हैं।

ऐसे ही आत्मा भी है और वर्तमान उसकी अवस्था भी होती है। उस अवस्था में ये देहादि मेरे हैं ऐसी उसे ममता हो रही है। जब ममता होती है और ममता का दुःख होता है, अनुभव में आता है उस समय, उस वक्त ही उस परिणाम से भिन्न आत्मा अंतर ज्ञान और आनंदमय विराजमान है, उसको देख तू, उसमें ममता के भाव का अभाव है। परिणाम में ममता का सद्भाव और द्रव्य स्वभाव में ममता का अभाव। पानी की पर्याय में उष्णता का सद्भाव और पानी के द्रव्य स्वभाव में शीतलता का सद्भाव और उष्णता का अभाव।

पानी मिट्टी के संग से, अपनी पर्याय की योग्यता से मलिन हुआ है। मिट्टी से हुआ नहीं है, मिट्टी तो निमित्तमात्र है। उपादान तो पानी की वर्तमान पर्याय की तत्समय की योग्यता है। वह मलिनभाव पानी की दशा में एक समयमात्र विद्यमान है तो सही। मिट्टी तो निमित्तमात्र है, मिट्टी से पानी मलिन हुआ नहीं है। वैसे निर्मल पानी के स्वभाव से मलिनता हुई नहीं है। परंतु जब वह (पर्याय) स्वयं पानी का निर्मल स्वभाव छोड़कर और मलिनरूप परिणमती है तब मिट्टी को निमित्तमात्र कहने में आता है। अब पानी में मलिनता हुई है वह हकीकत है, वह सत्य बात है। परंतु जब पानी में मलिनता है तब पानी के स्वभाव में स्वच्छता और निर्मलता सौ प्रतिशत रही हुई है। पानी ने अपने निर्मल स्वच्छ स्वभाव को छोड़ा नहीं है। परिणाम ने उसके स्वभाव को छोड़ा है। आहाहा!

पानी की अवस्था, पर्याय, हालत, उसने निर्मल क्षणिक स्वभाव को छोड़ा है और उसमें मलिनता हुई है। पानी की अवस्था जब मलिन हुई है तब पानी स्वभाव से स्वच्छ और निर्मल सौ प्रतिशत रहा हुआ है। इस कारण फिटकरी डालने पर पानी की मलिन अवस्था का अभाव होता है और पानी की स्वच्छ अवस्था का प्रादुर्भाव होता है, प्रगटता होती है।

ऐसे इस आत्मा इसके दो पहलू हैं। एक वर्तमान पहलू में पर के आश्रय से - लक्ष से ममत्व का भाव होता है। मोह-राग-द्वेष, क्रोध-मान-माया-लोभ, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद ऐसे-ऐसे अनेक प्रकार के विकार, पर्याय में विपरीत भाव होते हैं। पर्याय में विपरीत भाव बिल्कुल ना होते हों तो-तो उसकी दशा परमात्मारूप होती, तो संसार ही ना होता। संसार दशा में जीव की अवस्था में राग-द्वेष-मोह, ममत्व के भाव हैं तो सही। परंतु वह ममत्व, वे परिणाम दुःखदायक है। उसकी निवृत्ति कैसे हो? ऐसा शिष्य का प्रश्न है।

परिणाम में राग-द्वेष-मोह, ममता का स्वीकार करके उसका दुःख मैं भोग रहा हूँ, उसका

स्वीकार करके फिर, अब पूछता है कि यह दुःखदायक भाव (हैं तो) क्या हमें सदैव के लिए दुःखी ही रहना होगा? होना होगा? क्या हमारे भाग्य में सदैव के लिए नौकरी ही करनी लिखी होगी? ऐसा किसी को विचार आये। वह तो पुण्याधीन है, वह पुरुषार्थ आधीन नहीं है। परंतु धर्म तो पुरुषार्थ आधीन है। संयोग पुण्याधीन हैं और स्वभाव, धर्म पुरुषार्थ आधीन है। पुरुषार्थ से लक्ष्मी, संयोग नहीं मिलते, वे तो पुण्य के निमित्त से मिलते हैं। और धर्म तो पुरुषार्थ से होता है। वह धर्म कैसे होता है? उसकी बात उसे वास्तव में सुनने को भी मिलती नहीं है। तो विचार कब करे, निर्णय कब करे और आत्मा का अनुभव कब करे? आत्मा का नक्शा भी हाथ में नहीं आता है। नक्शा आये तो तो देखे कि इसमें हम किस तरफ से जायें तो आत्मा में घुस सकें और राग से छूट सकें।

मुमुक्षुः पुरुषार्थ की थोड़ी व्याख्या कीजिए, पुरुषार्थ की।

पू. लालचंदभाईः पुरुषार्थ किसे कहते हैं? पुरुषार्थ दो प्रकार के हैं। एक उल्टा पुरुषार्थ और एक उचित पुरुषार्थ। पुरुषार्थ दो प्रकार के हैं। और पुरुषार्थ करने का क्षेत्र कहाँ है? आत्मा किस क्षेत्र में पुरुषार्थ कर सकता है? और आत्मा किस क्षेत्र में पुरुषार्थ नहीं कर सकता? क्षेत्र समझ में आया न? हद। उसकी सीमा, मर्यादा। कि आत्मा है वह अपने स्वभाव को भूलकर और उल्टा पुरुषार्थ करे तो मात्र अपने ही क्षेत्र में करता है। राग-द्वेष, क्रोध-मान-माया-लोभ, ऐसा उल्टा पुरुषार्थ करे तो अज्ञानभाव से राग की उत्पत्ति होती है। परंतु उसका पुरुषार्थ बाह्य पदार्थ में कुछ काम करता है? हराम, सौ प्रतिशत झूठी बात है। कुम्हार उल्टा पुरुषार्थ करता है। कौनसा उल्टा पुरुषार्थ किया? कि यह जो मिट्टी में से घड़ा बनने का काल है, वह अपनी उपस्थिति-मौजूदगी देखकर, उपादान से घड़े की अवस्था होने के काल में होती है उस काल में कुम्हार खड़ा है, वह अभिमान करता है कि घड़े का करनेवाला मैं हूँ। तो उसका पुरुषार्थ अपना द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव छोड़कर मिट्टी तक जाता नहीं है। क्योंकि मिट्टी का द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव भिन्न है। उसके प्रदेश भिन्न और आत्मा के प्रदेश (भिन्न हैं)। प्रदेश अर्थात् क्षेत्र।

वह जीव उल्टा पुरुषार्थ करे तो उसकी मर्यादा कितनी? कि अज्ञानभाव से राग-द्वेष-मोह को करे और दुःख को भोगे। इतनी ही उसके पुरुषार्थ की मर्यादा (है)। परंतु उसका पुरुषार्थ आगे बढ़कर किसी बाहर के पदार्थ को परिणमावे, या पुरुषार्थ से हाथ ऊँचा-नीचा करे, कर सके, वह उसकी मर्यादा ही नहीं है। हाँ! हाथ ऊँचा-नीचा मैं कर सकता हूँ ऐसा अभिमान करे। वह अभिमान विकारी परिणाम है, वह विपरीत मान्यता है। ऐसी विपरीत मान्यता करे तो वह अपने क्षेत्र में घालमेल करता है। परंतु बाहर दूसरे पदार्थों में, आत्मा का क्षेत्र छोड़कर, जड़कर्म के क्षेत्र में आत्मा जाये, देह में आत्मा जाये, देह से बाहर रोटी, दाल, सब्जी, चावल करे, वह उसके क्षेत्र की मर्यादा के बाहर है।

आज तक किसी कुम्हार ने घड़ा बनाया नहीं है और किसी माता ने रोटी बनाई नहीं है। हाँ! उसने किया है क्या? अभिमान किया है। अज्ञानभाव से अभिमान करने की उसकी हद है। अज्ञानभाव से करे तो क्या करे? वह पुरुषार्थ उल्टा करता है, संकल्प और विकल्प किया करे तो उसके क्षेत्र में रहकर (करे, इतनी) कर्ता-कर्म की मर्यादा है। अज्ञानभाव से आत्मा कर्ता बने और अज्ञानजन्य राग-द्वेष-मोह के परिणाम उसका कर्म अर्थात् कार्य बने। इसप्रकार अपने क्षेत्र में ही (रहता है), वह

लक्ष्मण-रेखा है। उस क्षेत्र के बाहर, कभी कोई भी आत्मा, अज्ञानी हो या ज्ञानी हो, (वह) अपने क्षेत्र को छोड़कर बाहर, स्वचतुष्टय में से परचतुष्टय में जाये ऐसा तीनकाल में बनता नहीं है।

वह पुरुषार्थ करे तो, उल्टा पुरुषार्थ करे, कि मैं ऐसा कर डालूँ और मैं ऐ सा कर डालूँ और ऐसा करूँ और यहाँ जाना है, यहाँ पहुँचना है और ऐसा करना है। ऐसी कर्तत्वबुद्धि का उल्टा पुरुषार्थ करे तो संकल्प और विकल्प करे। संकल्प और विकल्प उसके क्षेत्र में होते हैं। संकल्प और विकल्प; बाहर क्षेत्र में नहीं होते, उसकी पर्याय के क्षेत्र में होते हैं। तो उसका फल वह दुःख भोगता है। वह उल्टा पुरुषार्थ है। अब देखो! वह आत्मा सीधा पुरुषार्थ भी कर सकता है। कि राग-द्वेष-मोह का कर्तव्य, कार्य विभावभाव है, मेरा स्वभाव नहीं है। मेरा स्वभाव तो अपनी आत्मा को जानकर उसमें स्थिर हो जाना (है) कि जिससे मुझे शांति का अनुभव हो। वह सीधा पुरुषार्थ है।

श्रीमद् ने भी कहा है, **करो सत्य पुरुषार्थ** (आत्मसिद्धि गाथा १३०)। सत्यपुरुषार्थ अर्थात् सम्यक् पुरुषार्थ। सम्यक् पुरुषार्थ अर्थात् जैसे आत्मा का स्वभाव है ऐसे स्वभाव की रचना जिसके द्वारा होती है ऐसे वीर्यगुण को पुरुषार्थ कहने में आता है। आत्मा में एक आत्मबल, वीर्य नाम का गुण है, और उसका कार्य स्वभाव की रचना करना है, ज्ञान की, दर्शन की, चारित्र की, सुख की, वीतरागता की। ऐसे साम्य परिणाम को, विषम परिणाम को छोड़कर, साम्य परिणाम की रचना करना, वह सत्य पुरुषार्थ है। और वह अपने क्षेत्र में स्वयं कर सकता है। परंतु उल्टा पुरुषार्थ करे तो मात्र मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र के ही परिणाम कर सकता है। परंतु जड़कर्म को करे और शरीर को करे और बाह्य के काम करे वह तीनकाल, तीनलोक में वस्तु के स्वरूप में नहीं है। वह अज्ञानी के घर की सब बातें हैं, कल्पना की। वह बात (झूठी है), स्वरूप ऐसा नहीं है। और उस कारण अभिमान करता है, उल्टा पुरुषार्थ (करता है)। कर सकता हूँ, ऐसी मिथ्या मान्यता करता है। हाथ को हिला सकता हूँ, ऐसी मिथ्या मान्यता कर सकता (है)। परंतु मिथ्या मान्यता को भी करे और हाथ को भी हिलाये, ऐसा तीनकाल में बनता नहीं है।

कुम्हार अभिमान कर सकता है कि इस घड़े की अवस्था का करनेवाला मैं हूँ। इसप्रकार मिथ्या पुरुषार्थ से मिथ्या अभिमान कर सकता है। परंतु वह घड़े को बना सके (ऐसा) तीनकाल, तीनलोक में वह वस्तु-स्थिति में वह है नहीं। जीव निमित्त से देखते हैं, ज्ञानी उपादान से देखते हैं। क्या उपादान और क्या निमित्त? आहाहा!

ज्ञानी धर्मात्मा वस्तु के - पदार्थ के स्वभाव से देखते हैं, उपादान से देखते हैं। अज्ञानी प्राणी निमित्त से देखते हैं इसलिए उन्हें दो द्रव्य के बीच कुछ कर्ता-कर्म संबंध की भ्रांति हो जाती है।

मुमुक्षु: उपादान क्या और निमित्त क्या?

पू. लालचंदभाई: उपादान क्या और निमित्त क्या? कि माटी है वह उपादान है और उसकी अवस्था प्रगट होती है, घड़े की, वह उपादान - स्वशक्ति से होती है। उसके स्वभाव से घट की अवस्था होती है। ये माटी आदि-मध्य-अंत में परिणमकर घटरूप से परिणमती है। कुम्हार बिल्कुल उसमें प्रवेश कर सकता नहीं। उसके (मिट्टी के) द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव भिन्न (और) कुम्हार की आत्मा के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव भिन्न हैं। कुम्हार (उसमें) निमित्त है और माटी उपादान है। कार्य उपादान से होता है। कार्य तीनकाल में निमित्त से हो सकता नहीं।

कारणानुविधायीनि कार्याणी (समयसार गाथा ६८ टीका), **कारणानुविधायीनि कार्याणी**, कारण को अनुसरण करके कार्य होता है। कारण अर्थात् माटी, उस माटी में अंतर्गर्भित शक्ति, पर्याय के घट होने की योग्यता, थी (वह) अपने स्वकाल से प्रगट होती है। **कारणानुविधायीनि कार्याणी** कारण जैसा है वैसा ही कार्य प्रगट होता है। परंतु कुम्हार निमित्त है, उस निमित्त से घट की अवस्था होती है ऐसा वस्तु के स्वभाव में नहीं है। वह अज्ञानी मानता है। अज्ञानी क्यों मानता है? कि उसकी मिट्टी के ऊपर नजर नहीं है, उसकी नजर कुम्हार के ऊपर है कि कुम्हार आया अतः घड़े की अवस्था हुई। (अज्ञानी मानता है कि) कर्म का उदय आया अतः क्रोध हुआ। कर्म के उदय से क्रोध नहीं होता। वह अपने स्वभाव को भूलकर अज्ञानभाव से क्रोध करता है तब होता है। कर्म उसका कर्ता नहीं है, कर्म निमित्तमात्र है। कर्म को निमित्त कहते हैं। और क्रोध की अवस्था प्रगट हुई वह उपादान, अपनी स्वशक्ति से हुई है। क्या उपादान? क्या निमित्त? क्या निश्चय? क्या व्यवहार? क्या नवतत्त्व? क्या हेय? क्या उपादेय? क्या ज्ञेय? बहुत कम है परंतु कम को समझने का भी प्रयत्न नहीं। आहाहा!

जिसमें शाश्वत सुख मिले उसके लिए घंटा, दो घंटा दिन में न मिले और आठ-आठ, दस-दस घंटे इन संयोगों के पीछे प्राप्त करने के लिए (मिले)। प्राप्त तो होता है, उसे राग प्राप्त होता है, (परंतु) पैसा तो किसी को प्राप्त नहीं होता। पैसा किसी के पास आता नहीं है। पैसा मेरा, ऐसी ममता आती है और दूसरे भव में ममता लेकर जाता है, परंतु पैसा लेकर नहीं जाता। पैसा यदि उसका हो तो पैसा भी (उसके) साथ जाना चाहिए। परंतु उसके साथ क्या जाता है? यह पैसा मेरा है, मकान मेरा है, ऐसी ममता लेकर अज्ञानभाव से जाता है।

और ज्ञानी धर्मात्मा (ऐसा मानते हैं कि) जगत के कोई पदार्थ मेरे नहीं हैं, मेरा तो एक ज्ञान है। इसप्रकार निर्ममत्वभाव से परिणमते हुए, वीतरागभाव से परिणमते हुए वे वीतरागभाव को विग्रहगति में साथ में लेकर जाते हैं। विग्रहगति उसे कहते हैं कि यहाँ से जब शरीर छूटता है तब तीन समय के अंदर वह दूसरे भव में जहाँ उपजने वाला हो वहाँ उपज जाता है। उसे विग्रहगति कहते हैं। विग्रहगति में उसे दो शरीर होते हैं कर्माण शरीर और तेजस शरीर। यह औदारिक शरीर यहाँ पड़ा रहता है। परंतु किसी प्रकार का कुछ अभ्यास नहीं और उसमें भी यह लंदन। आहाहा! सत् की बात सुनने को न मिले। किस दिन विचार करे? किस दिन निर्णय करे? और किस दिन अनुभव करे? आत्मा का नक्शा भी हाथ में नहीं आता। नक्शा हाथ में आये तो पता चले कि हमें यहाँ से यहाँ जाना और यहाँ से यहाँ जाना और यहाँ से अंत में आत्मा में जाना है। परंतु आत्मा का नक्शा भी नहीं मिलता। आहाहा! नक्शा तो है परंतु उस नक्शे को खरीदता भी नहीं और उसको देखता भी नहीं है। तो-तो उसे रास्ता मिल जाये।

निमित्त और उपादान यह वस्तु खास समझने जैसी है। अनादिकाल से जीव को कर्ताबुद्धि है। इससे यह होता है और इससे यह होता है, यह हो तो यह हो और यह न हो तो यह न हो। इसप्रकार वह संयोग से देखता है परंतु उसके स्वभाव से नहीं देखता है। मिट्टी के स्वभाव से देखे तो मिट्टी स्वयं आदि-मध्य-अंत में परिणमती, परिणमती, परिणमती घटरूप से परिणम जाती है। परंतु कुम्हार के ऊपर नजर है जो कि (उस) मिट्टी के स्वभाव को नहीं देखता (परंतु) संयोग को देखता है, संयोगाधीन

दृष्टिवाला जीव निमित्त को देखता है कि कुम्हार था तो घड़ा हुआ। ऐसे सभी पदार्थों के अंदर, यदि एक पदार्थ दूसरे पदार्थ का कर्ता हो, तो दूसरे पदार्थ के लिए तीसरा पदार्थ कर्ता चाहिए और तीसरे पदार्थ के परिणमन के लिए चौथा पदार्थ कर्ता चाहिए। इसप्रकार एक पदार्थ दूसरे पदार्थ के आधीन, दूसरा पदार्थ तीसरे पदार्थ के आधीन तो **अनवस्था** (पंचाध्यायी पूर्वार्ध गाथा ११) नामक बड़ा **दोष** उत्पन्न हो जाये। **अनवस्था** क्या है? वह भी खबर नहीं कुछ। न्याय समझ में आता है?

घड़ा बने वह कुम्हार से बने, तो (कुम्हार) के परिणाम करने के लिए दूसरा कोई पदार्थ चाहिए, और उस तीसरे पदार्थ के परिणमन के लिए चौथा पदार्थ चाहिए। तो सभी पदार्थ पराधीन हो जायेंगे और उसका अंत कहीं आयेगा नहीं। उसे **अनवस्था** नाम का दोष कहने में आता है। बड़ा दोष लगता है उसमें। उसमें अधर्मबुद्धि होती है। धर्म की प्रगटता होती नहीं है।

ऐसे निश्चय और व्यवहार। निश्चय किसको कहना? कि यथार्थ का नाम निश्चय और उपचार का नाम व्यवहार। घड़ा होता है, मिट्टी में से होता है, वह निश्चयनय का कथन है। और निमित्त देखकर, कुम्हार ने घड़ा बनाया, वह उपचार का कथन है। यथार्थ का नाम निश्चय और उपचार का नाम व्यवहार। कुम्हार से घड़ा हुआ ऐसा जो उपचार आया उसे व्यवहार कहने में आता है।

ऐसा स्वरूप निमित्त-उपादान, निश्चय-व्यवहार, छह द्रव्य, नवतत्त्व क्या? कर्ता-कर्म क्या? ज्ञाता-ज्ञेय क्या? है तो थोड़ा ही परंतु समझने की जिज्ञासा रखनी चाहिए। इसकी छोटी, छोटी पुस्तकें भी शब्दकोष के लिए प्रकाशित हो गई हैं। बहुत बहनें और भाई कहते हैं कि हमें द्रव्य, गुण और पर्याय के नाम भी नये लगते हैं। और द्रव्य-गुण-पर्याय के नाम नये लगें। उपादान क्या? निमित्त क्या? हमने कभी नाम (भी) सुना नहीं है। उनका स्वरूप क्या? भाई! यदि जिज्ञासा हो तो उसके लिए जैन-सिद्धांत-प्रवेशिका नामक एक छोटी पुस्तिका है। उसके अंदर सब खुलासा है। एक-एक शब्द की व्याख्या क्या उसका सब खुलासा है। वह थोड़ा अभ्यास करना चाहिए। आधा घंटा, घंटा किसी के पास सीखना चाहिए या स्वयं पढ़े तो भी समझ में आये ऐसा है। उसमें पराधीनता नहीं, स्वयं घर पर मननपूर्वक एक बार, दो बार, तीन बार पढ़े तो उसे सब कुछ समझ में आये ऐसा है। इसमें दृष्टांत भी दिये हैं।

अतः यहाँ आचार्य भगवान फरमाते हैं, शिष्य का प्रश्न है, प्रभु परिणाम में ममता, मोह-राग-द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ समय-समय हुआ ही करते हैं। विकृतभाव, पुण्य और पाप (के) दुःखदायक भाव अटकते ही नहीं हैं। और उनका दुःख मैं भोगता हूँ। प्रभु! उस दुःख के नाश का उपाय क्या? कि सुन! तेरे परिणाम में ममता होती है हमें पता है। और उससे तू दुःखी हो रहा है वह भी हमें पता है। और उसके नाश का उपाय भी हमें जानना चाहिए। वह उपाय तुझे बताते हैं कि परिणाम के ऊपर से लक्ष छोड़ दे। परिणाम है उसका स्वीकार किया, अब परिणाम के ऊपर से लक्ष छोड़ दे।

आत्मा में दो पहलू हैं। उसमें वर्तमान एक चलते हुए परिणाम का पहलू (है), पर्याय का, दशा का, हालत का, वहाँ ही देखा करता है परंतु इस (ध्रुव) की ओर देखता नहीं है। वे ऐसा कहते हैं कि तू यहाँ (पर्याय को) देखता है तो अब यहाँ (ध्रुव को) देख। यहाँ (ध्रुव) देखकर फिर यहाँ (पर्याय को) देख, यहाँ (पर्याय) देखकर फिर यहाँ (ध्रुव) देख और यहाँ (ध्रुव की तरफ) ऐसा कर दे, कि भगवान आत्मा

निर्ममत्व है, मेरा द्रव्य परमात्मा स्वभाव ममता से रहित है। परिणाम में ममता है तब जीवतत्त्व ममत्व रहित है। आस्रवतत्त्व में ममता है और जीवतत्त्व में ममता नहीं है। ममत्व रहित जीवतत्त्व है। ऐसी जीवतत्त्व और आस्रवतत्त्व की जुदाई जब जाने तब एकताबुद्धि टूटे और दृष्टि द्रव्य के ऊपर आ जाये और आत्मा का अनुभव हो और परिणाम में जो ममता के परिणाम थे उन परिणाम में निर्ममत्व प्रगट हो।

द्रव्य स्वभाव निर्ममत्व है उसका अवलंबन लेने पर, शुद्ध का अवलंबन लेने पर, परिणाम में अशुद्ध परिणाम का नाश हो जाता है, परिणाम में शुद्धता प्रगट होती है, परिणाम में निर्ममत्व दशा प्रगट होती है, वीतरागी दशा। एक आत्मा उसके दो पहलू। आहाहा! यदि दो पहलू ना हों तो नवतत्त्व की सिद्धि नहीं होती। दो पहलू ना हों तो संसार और मोक्ष की सिद्धि नहीं होती। दो पहलूवाला एक आत्म पदार्थ है। उसमें एक पहलू पलटता हुआ नाशवान है, कर्म सापेक्ष है; और दूसरा पहलू नित्य, ध्रुव, टिकता हुआ और निरपेक्ष है। वह (नित्य पहलू) शुद्ध है। वर्तमान पर्याय का पहलू अशुद्ध है। द्रव्य का पहलू निर्ममत्व है, पर्याय में ममता है। अब पर्याय में ममता का अभाव कैसे हो? कि मैं द्रव्य स्वभाव से निर्ममत्व हूँ उसका अवलंबन लेने पर, उसमें एकाग्र होने पर, उपयोग को उसमें जोड़ने पर, उसका ध्यान करने पर धर्मध्यान प्रगट होकर ममता का अभाव होता है। और ममत्व के स्थान पर निर्ममत्व वीतरागी पर्याय प्रगट होती है - सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की।

और **ज्ञानदर्शनसे पूर्ण हूँ**। चार बोल से आत्मा का स्वरूप वर्णन करते हैं। एक हूँ, शुद्ध हूँ, निर्मम हूँ और ज्ञानदर्शन से पूर्ण हूँ। वर्तमान में ज्ञान-दर्शन की अल्पज्ञ अवस्था है तो सही, पर्याय में, हालत में ज्ञान क्षयोपशमभाव से है। अर्थात् अल्प उघाड़ है, जानना-देखना पूरा प्रगट हुआ नहीं है। जैसे केवली परमात्मा को पूर्ण ज्ञान और पूर्ण दर्शन उपयोग प्रगट हो गया है, ऐसा छद्मस्थ को, संसारी जीवों को, अज्ञानी जीवों को उस प्रकार की उघाड़ की दशा नहीं है। उसकी दशा में थोड़ा जानना और देखना उतना उघाड़ है तो सही। वह अपूर्णता, ज्ञान और दर्शन की अपूर्णता पर्याय में, दशा में, हालत में है तो सही। परंतु उस पहलू को गौण करके, आहाहा! उस पहलू का लक्ष छोड़कर जब आत्मा आत्मा के स्वभाव की ओर देखता है, तब मैं तो ज्ञान-दर्शन से परिपूर्ण हूँ। ऐसा जब ज्ञान-दर्शन से परिपूर्ण हूँ ऐसा श्रद्धा-ज्ञान में आता है तब उसे अतीन्द्रियज्ञान द्वारा आनंद का अनुभव होता है।

मुमुक्षु: दूसरे पहलू का लक्ष छूटता नहीं है तो क्या करना?

पू. लालचंदभाई: छोड़ देना। छूटता नहीं है तो कौन छुड़ावे? दूसरा कोई छुड़ायेगा? उसमें उसे प्रेम है। उस पहलू में उसे प्रेम चढ़ा है उसको। उस पहलू की महिमा है। उसे त्रिकाली सामान्य भगवान आत्मा की महिमा आती नहीं है।

पुण्य और पुण्य के फल में प्रेमवाला, प्रीतिवाला, आहाहा! व्यभिचारी है। कषाय का संग करता है (और) दुःखी होता है। प्रेम छोड़ दे, पुण्य और पुण्य के फल की प्रीति, रुचि, प्रेम उसकी महिमा छोड़ दे। उसमें कुछ नहीं है, वे दुःख के भाव हैं, वे दुःखदायकभाव हैं। तेरा स्वभाव पूर्णानन्द की मूर्ति अंदर ज्ञान और आनंद चैतन्य स्वभाव से विराजमान है। चिद्घन आत्मा है। आत्मा चिद्रूप है, आत्मा चिद्घन, चिद्रूप है, ज्ञान उसका रूप है। ॐ **शुद्धचिद्रूपकोऽहं** (तत्त्वज्ञान तरंगिणी, द्वितीय अध्याय, गाथा ८), मैं

तो एक चिद्रूप आत्मा हूँ। आहाहा! मैं तो एक ज्ञान-दर्शन से परिपूर्ण आत्मा हूँ। वह कब विचार करना? कि वर्तमान में ज्ञान की अल्पज्ञ अवस्था है, तब। परंतु अल्पज्ञ अवस्था है वह पूर्ण नहीं है, पर्याय में अपूर्णता है। वह पर्याय की अपूर्णता रूपवाला जो ज्ञान वह अपने भाव को लक्ष में से छोड़कर द्रव्य स्वभाव से विचार करता है कि मैं तो ज्ञान-दर्शन से परिपूर्ण हूँ। आहाहा!

ज्ञानदर्शनसे पूर्ण हूँ; उस स्वभावमें रहता हुआ, ऐसा जो मेरा त्रिकाली सामान्य स्वभाव है उसमें रहता हुआ, उसमें लक्ष करता हुआ, उसमें लीन होता हुआ ... लीन होता है वह चारित्र। लक्ष करना वह सम्यग्दर्शन और ज्ञान। उसमें लीनता करना उसका नाम चारित्र है। उस स्वभाव में रहता हुआ, विभाव से हटता हुआ; और स्वभाव में रहता हुआ, विभाव से बुद्धि हटाता है। विभाव के ऊपर प्रेम था, पुण्य और पुण्य के फल ऊपर प्रीति और रुचि थी, उसे छोड़कर भगवान आत्मा की रुचि और प्रेम और महिमा लगती है, तब संसार का अंत आयेगा। अन्यथा पुण्य और पुण्य के फल में, रुचि में, जगत के जीव मग्न होते हैं।

अज्ञानी कहता है कि ये सब (ज्ञानी) मूर्ख हैं, पागल हैं। ज्ञानी अज्ञानी को पागल कहता है; और अज्ञानी ज्ञानी को पागल कहता है कि 'कुम्हार से घड़ा नहीं होता', कहता (है कि) 'पागल लगते हैं'! अज्ञानी ऐसा कहता है। अज्ञानी ज्ञानी को पागल कहता है। यह तो अनादि का है, यह कोई नया नहीं हैं। यह तो अनादिकाल से चला आता है। परंतु ज्ञानी को वह अज्ञानी पागल कहे न, तो भी उन्हें उसके प्रति द्वेष आता नहीं, करुणा आती है। उसे पता नहीं है न, उसे स्वभाव की खबर नहीं है न, वस्तु स्वभाव क्या है वह जानता नहीं है न, इसलिए वह कहता है। वह भी भगवान स्वभाव से है। आज भूला है और कल परमात्मा भी हो जाये। ऐसा जानकर उसके प्रति करुणा है, ज्ञानी को किसी के प्रति द्वेष होता नहीं है। उनके विरोधियों के प्रति भी द्वेष होता नहीं है। आहाहा! विरोधी कौन? विरोधी तो राग-द्वेष के परिणाम वे विरोधी तत्त्व हैं। अन्य कोई विरोधी इस जगत में नहीं है। कोई-किसी का विरोध करनेवाला नहीं है। दुश्मन हो तो रागादि परिणाम हैं। उसका यदि मित्र हो तो वीतरागी पर्याय उसका मित्र है। बाकी जगत में कोई मित्र नहीं है और कोई दुश्मन नहीं है। ऐसा ज्ञानी जानता हुआ आत्मा का अवलंबन लेता हुआ, स्वभाव में स्थिर होता हुआ, अल्पकाल में परिपूर्ण अवस्था प्रगट करके केवलज्ञान प्राप्त करते हैं। आहाहा!

उस स्वभावमें रहता हुआ, उसमें (-उस चैतन्य-अनुभवमें) लीन होता हुआ, आहाहा! जो राग में लीनता थी, लीन तो कहीं न कहीं रहता (ही) है। या राग में लीन हो और या स्वभाव में लीन हो। या विभाव में मग्न हो या स्वभाव में मग्न हो। **उसमें लीन होता हुआ (मैं) इन क्रोधादिक सर्व आस्रवोंको क्षयको प्राप्त कराता हूँ।** ऐसा विचार करके, निर्णय करके, वह आत्मा प्रयोग करता है। पहले theory (सिद्धांत) जानता है। Theory जानने के बाद प्रैक्टिकल (क्रियात्मक प्रयोग) करता है। तब उसे आत्मा का अनुभव होता है। मात्र सुनने से, मात्र पढ़ने से, मात्र धारणा करने से किसी आत्मा को अनुभव हो सकता नहीं।

ऐसा तो ग्यारह अंग तक जीव अभ्यास कर ले, उसमें कुछ नहीं है, वह तो अज्ञान है। शास्त्र का ज्ञान वह ज्ञान नहीं है, आत्मा का ज्ञान वह ज्ञान है।

मुमुक्षु: ग्यारह अंग अर्थात् क्या?

पू. लालचंदभाई: ग्यारह अंग अर्थात् सर्वज्ञ भगवान की वाणी में बारह अंग आते हैं उसकी गणधर भगवान अंतर्मुहूर्त में उस द्रव्यश्रुत की रचना करते हैं। उसमें लाखों, करोड़ों, अरबों श्लोक होते हैं। बारह अंग के अंदर लाखों, करोड़ों, अरबों श्लोक होते हैं। वे श्लोक कंठस्थ हो जाते हैं। सर्वज्ञ भगवान की वाणी सुनकर, गौतम गणधर ने, दो घड़ी के अंदर, ऐसी धारणा शक्ति होती है कि बारह अंग का उघाड़ उन्हें द्रव्यश्रुत का ज्ञान होता है। धारणा, पहले के काल में धारणा थी, शास्त्र नहीं थे। फिर जैसे-जैसे स्मरण शक्ति घटती गई वैसे-वैसे आचार्य भगवान को ख्याल आया कि अब स्मरण शक्ति घटती जाती है अतः ताड़पत्र के ऊपर शास्त्र लिखने शुरू हुए। वे ताड़पत्र भी वर्तमान में हैं। दो हजार वर्ष पहले के ताड़पत्र भी वर्तमान में हैं। गिरनार के ऊपर एक धरसेन आचार्य हो गये हैं, जिन्होंने षट्खंडागम की रचना की है। षट्खंडागम वह आगम है, बड़ा जबरदस्त। उसके अनेक बड़े शास्त्रों के volume (भाग) हैं।

वे धरसेन आचार्य भगवान, गिरनार के ऊपर चंद्रगुफा है, वहाँ ध्यान में मग्न थे, ध्यान में मस्त थे। उन्हें अपना आयुष्य, अब अल्पकाल में पूर्ण होगा, ऐसा ख्याल आया। अतः किसी श्रावक से बात की और श्रावक ने दक्षिण में दूत भेजे और दो साधु वहाँ से ज्ञान प्राप्त करने के लिए आते हैं। तब वे विनयपूर्वक नमस्कार करते हुए आते हैं। वहाँ से, दक्षिण में से भूतबलि और पुष्पदंत दो आचार्य आते हैं। और उन दोनों (आचार्य) को अलग-अलग मंत्र देते हैं। उन मंत्र में (एक) के मंत्र में अधिक लिख दिया और दूसरे को कम लिखा। और कहा कि इसकी तुम साधना करो और साधना करके आओ तो मेरे पास (जो) ज्ञान है वो तुम्हें दूँगा। उनकी परीक्षा करने के लिए (ऐसा कहा), कि ये ग्रहण कर सकें ऐसा है या नहीं? तब तीन उपवास करके उन्होंने मंत्र की साधना की तब कुरूपी देवियाँ आईं। एकदम दाँत बड़े और कान बड़े और पूँछ और सींग और ऐसे। देव आये उपस्थित हुए, तो कहा (कि) यह देव शासन-देवता नहीं है। फिर उन्होंने स्वयं मंत्र में संशोधन किया, गुरु के पास नहीं गये। मंत्र में हीनाधिक मात्रा थी, वह मात्रा ठीक की और पुनः मंत्र की साधना की और शासनदेव उपस्थित हुए।

उसके बाद धरसेन आचार्य भगवान के पास जाते हैं और उनके सामने बैठते हैं और हजारों, लाखों श्लोक धरसेन आचार्य भगवान मुखपाठ करते हैं और ये (मुनि) श्रवण करके ग्रहण कर लेते हैं, धारणा में। वहाँ तक तो अभी मुखपाठ था। वहाँ तक लिपिबद्ध नहीं थी। (अभी) ताड़पत्र के ऊपर शास्त्र लिखे नहीं गये थे। उस गिरनार पर से जब दक्षिण में जाते हैं तब बीच में अंकलेश्वर आता है, भरूच के पास। वहाँ वे दोनों मुनिराज पहुँचते हैं और उनको विचार आता है कि अब यह धारणा शक्ति क्रमशः-क्रमशः घटती जायेगी। हम इसे ताड़पत्र के ऊपर लिख डालें। अतः वहाँ शास्त्रों की रचना होती है और शास्त्र लिखते हैं।

कुंदकुंदाचार्य भगवान दो हजार वर्ष पहले हुए, उनके पहले धरसेन आचार्य हुए हैं। उनके शास्त्र भी वर्तमान में ताड़पत्र के ऊपर विद्यमान हैं। मूडबद्री में हैं। वे सब नक्शे हैं, आत्मा में कहाँ जाना उसके नक्शे। ये जयेश और राजेश अपने, ऐसे नक्शा देखते हैं। मैंने कहा तू पूछ तो सही (कि) भाई, इसमें कहाँ जाना है? तो कहा, भाई पूछने की जरूरत नहीं है, इसमें नक्शे में सब कुछ है, कुछ

पूछने की जरूरत नहीं है।

यह कदाचित् किसी काल में ज्ञानी का योग न हो, प्रत्यक्ष ज्ञानी का योग न हो तो ये नक्शे सब बनाकर गये हैं। आत्मा का स्वरूप क्या? कहाँ जाना? किसमें स्थिर होना? वह सब इसमें लिखा हुआ है, परंतु वह नक्शा खोलने की फुरसत (नहीं है)। आहाहा!

मुमुक्षु: इस नक्शे के अतिरिक्त दूसरा कोई रास्ता नहीं है?

पू. लालचंदभाई: कोई दूसरा रास्ता नहीं है। आहाहा! यदि आत्मा की प्राप्ति करनी हो और दुःख से छूटना हो तो यह एक ही रास्ता है, आत्मा का अवलंबन, धर्म की शरण के (अलावा) कोई दूसरी जगत में शरण नहीं है। आहाहा!

करोड़ों अरबों रुपये पड़े रहते हैं और तड़प-तड़पकर मरकर जाता है हों! छटपटाहट, ऐसा रोग आता है कठोर, कोई बचा नहीं सकता। कि भाई ढेर करो, आहाहा! पैसों का ढेर करता है, सोने-चाँदी के ढेर करे तो भी कोई बचा सकता नहीं। फट से आयुष्य छूट जाता है। कोई शरण इस जगत में नहीं है। (एकमात्र) शरण हो तो अपना शुद्धात्मा शरण है। उसका अवलंबन लेने से दुःख टलता है और सुख की प्राप्ति होती है। दूसरा कोई उपाय नहीं है। **एक होय त्रण कालमां, परमारथनो पंथ; प्रेरे ते परमार्थने, ते व्यवहार समंत।** (आत्मसिद्धि शास्त्र गाथा ३६), कि ज्ञान वह आत्मा, दर्शन वह आत्मा, इतना अभेद का जो भेद, जो भेद अभेद को प्रसिद्ध करता है, इतना व्यवहार सम्मत है। शुभभाव करना वह अज्ञान है, व्यवहार नहीं है। आहाहा! **इन क्रोधादिक सर्व आस्रवोंको क्षयको प्राप्त कराता हूँ।**

टीका:- टीका अर्थात् विस्तार। दो हजार वर्ष पहले कुंदकुंद आचार्य भगवान हुए, उन्होंने प्राकृत में इस श्लोक की रचना की है। उनके बाद, एक हजार वर्ष के बाद, अर्थात् आज से एक हजार वर्ष पूर्व, एक समर्थ (अमृतचंद्र) आचार्य हो गये हैं, जो अध्यात्म की मस्ती परिपूर्ण जिनकी है और जिन्होंने अकेले न्याय से शास्त्रों की रचना की है कि जीव मध्यस्थ होकर यदि अभ्यास करे, मध्यस्थ होकर सुने, तो उसे अंतर में से हकार आये, हकार आये ऐसी बात है।

मध्यस्थ होना चाहिए। अपना पक्ष छोड़ना चाहिए। सत्य वह मेरा, मेरा वह सत्य ऐसा नहीं। सच्चा वह मेरा, ऐसे उसका मन यदि थोड़ा खुल्ला रखे तो उसे आत्मा की प्राप्ति हो। बाकी पक्ष में पड़ जाये, यह कोई पक्षपात का विषय नहीं है, यह तो आत्मा की बात है। इसमें कहीं किसी पक्ष की या संप्रदाय की बात नहीं है। पदार्थ के स्वरूप की यह बात है। वीतराग-विज्ञान है यह। इस जड़ के विज्ञान की बात तो भटकने के लिए है। यह तो वीतराग-विज्ञान है कि जिसका अवलंबन लेने पर आत्मा को भव का अंत आ जाये। भव का अंत कहो या दुःख का अंत कहो। भव है वह दुःखरूप है।

भव का अंत कहो या दुःख का अंत कहो, उसका उपाय इसमें लिखा है। उसकी टीका अर्थात् विस्तार अमृतचंद्राचार्य भगवान (की) आत्मख्याति नाम की टीका है। (आत्मख्याति) अर्थात् आत्मा की प्रसिद्धि कैसे हो, अज्ञानी प्राणियों को आत्मा की उपलब्धि, प्राप्ति कैसे होवे उसके लिए शास्त्र की रचना की है।

टीका:- मैं यह आत्मा-प्रत्यक्ष अखंड अनंत चिन्मात्र ज्योति-अनादि-अनंत नित्य-

उदयरूप विज्ञानघनस्वभावभावत्वके कारण एक हूँ; आहाहा! चौबीस घंटों में आत्मा याद नहीं आता। आठ दिवस में भी याद नहीं आता, महीना हो जावे, छः महीने हो जावें, आत्मा याद ही नहीं आवे। आत्मा भूल गया है। जिसे याद करना चाहिए उसे समय-समय भूलता है। और जिसका विस्मरण करने जैसा है, जिसे याद करने जैसा नहीं है उसे समय-समय याद करता है। નજર ત્યાં બહારમાં છે. બહારમાં જુએ છે પણ અંતરમાં જોતો નથી. नजर वहाँ बाहर में है। बाहर में देखता है परंतु अंतर में नहीं देखता है।

मैं यह आत्मा-प्रत्यक्ष, परोक्ष वह मति-श्रुतज्ञान है, भगवान आत्मा तो तीनोंकाल प्रत्यक्ष है। प्रत्यक्ष होने का ही उसका स्वभाव है। परोक्ष रहने का उसका मूल स्वभाव नहीं है। जो नजर करे उसे दर्शन देता है। जो नजर करे उसे दर्शन दे, ऐसा उसका प्रत्यक्ष होने का स्वभाव है। **मैं यह आत्मा**, यह आत्मा की बात है हों? **प्रत्यक्ष** फिर **अखंड**, यह खंडज्ञान वह मैं नहीं, मैं तो अनादि-अनंत अखंड एक वस्तु हूँ। **अनंत चिन्मात्र-ज्योति**, जो परिणाम एक समय की मर्यादावाला, (जिसका) अंत आ जाये, वह मैं नहीं। मैं तो **अनादि-अनंत**, **अनंत चिन्मात्र**, अनंत बेहद सामर्थ्य ज्ञान और दर्शन ऐसी सामर्थ्य से भरा हुआ **मैं आत्मा हूँ**, और **अनादि-अनंत**, परिणाम सादि-सांत है और आत्मा अनादि-अनंत है। संसार अनादि-सांत, मोक्ष की अवस्था सादि-अनंत और आत्मा अनादि-अनंत है।

आत्मा अनादि-अनंत, संसार अनादि-सांत, अनादि का होते हुए भी संसार का अभाव हो जाता है। और मोक्ष सादि-अनंत। मोक्ष की शुरूआत होती है और किसी काल में अंत आता नहीं उसे सादि-अनंत कहालाता है। और भगवान आत्मा अनादि-अनंत है। **अनादि-अनंत** इसमें शब्द हैं उसका अर्थ होता है हों! **अनादि-अनंत** आत्मा है। **अनादि-अनंत** अर्थात् किसी काल में भी जिसकी भूतकाल में उत्पत्ति नहीं हुई है। वे पाँच प्रकारों के पदार्थ इकट्ठे मिलें और जीव की उत्पत्ति हो वह बात सौ प्रतिशत झूठी है। आहाहा!

जैनदर्शन के ऊपर जब तक अनन्य श्रद्धा नहीं है तब तक वह सम्यग्दर्शन होने का भी पात्र नहीं है। आहाहा! जो सर्वज्ञ भगवान ने पदार्थों का स्वरूप कहा है ऐसा स्वरूप कोई कह नहीं सका, कोई कह सकता ही नहीं। इसलिए **अनादि-अनंत** आत्मा (है), भूतकाल में किसी संयोग से जिसकी उत्पत्ति नहीं हुई है, और किसी वियोग से जिसका नाश नहीं होता ऐसा **अनादि-अनंत** आत्मा है। ये श्रीमद् राजचन्द्रजी में भी यह बात आती है। ज्ञानी तो सभी बात कह गये हैं। **अनादि-अनंत**, जिसकी आदि नहीं और जिसका अंत नहीं। संयोग की आदि और संयोग का अंत।

यह मनुष्य पर्याय मिली, उसकी शुरूआत हुई और फिर आयुष्य पूरा होता है तो फिर अंत। संयोग की शुरूआत भी है और अंत भी है। ऐसे आठ कर्मों की अनादि है परंतु उनका अंत आ जाता है। ऐसे ही राग उसकी आदि और अंत। राग आया, क्रोध आया और क्रोध गया। क्रोध की आदि और क्रोध का अंत। परंतु क्रोध को जाननेवाला जो आत्मा है उसका किसी काल में अंत आता नहीं है। वह तो अनादि-अनंत वस्तु है। **नित्य-उदयरूप**, नित्य प्रगटरूप है। आहाहा! भगवान आत्मा हमें दिखता नहीं है? अरे भाई! देखा नहीं इसलिए दिखता नहीं। जो होवे तो कैसे नहीं दिखे? ऐसे श्रीमद् में (आत्मसिद्धि गाथा ४७) भी छह प्रश्न-उत्तर किये हैं। उसमें भी आया है 'यह घट-पट दिखाई देते हैं

इसलिए वह है; आत्मा हमें दिखाई नहीं देता इसलिए नहीं है'। ऐसे बहुत प्रश्नों का आत्मसिद्धि शास्त्र में, छह पद का खुलासा बहुत है उसमें। आहाहा! परंतु तत्त्व के अभ्यास के बिना वह श्रीमद् के हृदय को भी पहचान नहीं सकता। जैनदर्शन के ऊपर अनन्य श्रद्धा चाहिए। जैनदर्शन परिपूर्ण दर्शन है। दूसरे किसी दर्शन में सम्यग्दर्शन हो नहीं सकता, तीनकाल में नहीं होता। आहाहा! भगवान आत्मा **नित्य-उदयरूप है**, नित्य प्रगटरूप है। **अनादि-अनंत** और नित्य प्रगटरूप। है, है और है, उसका किसी दिन नाश नहीं होता।

नित्य-उदयरूप विज्ञानघनस्वभावभावत्वके कारण एक हूँ; आहाहा! क्या कहते हैं? आत्मा का स्वभाव विशेष ज्ञान से घन, ठोस वह परमात्मा सघन ऐसा रहा हुआ है, इस कारण से मैं एक हूँ। यह अनेकपना वह मेरा स्वभाव नहीं है। यह क्रोध और मान और माया और लोभ और देव पर्याय और मनुष्य पर्याय ऐसी जो अनेकता है वह अनेकता वह मेरा स्वभाव नहीं है, मैं तो **एक हूँ**। एक होने के कारण मेरा स्वभाव **विज्ञानघन** है। **अनादि-अनंत** हूँ, चिन्मयमूर्ति हूँ, **प्रत्यक्ष** हूँ, **अखंड** हूँ, **नित्य-उदयरूप** होने के कारण मैं **एक हूँ**। इस एक के ऊपर लक्ष कर और अनेक का लक्ष छोड़ दे। अनेक का अवलंबन छोड़ और एक का अवलंबन कर। एक का अवलंबन लेने से एकाग्रता होती है, और एकाग्रता में, ध्यान में सम्यग्दर्शन प्रगट हो जाता है।